समक्ष आरएन मित्तल, माननीय न्यायमूर्ति

ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स, - अपीलकर्ता

बनाम

लाजवंती केमिकल्स और अन्य, - प्रतिवादी

1985 की नियमित प्रथम अपील (बिना संख्या के)

14 मार्च 1986.

भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 227- का दायरा - न्यायालय शुल्क अधिनियम (1870 का VII)- न्यायालय शुल्क की वापसी-कब आदेश दिया जा सकता है - सिविल प्रक्रिया संहिता (1908 का V)- आदेश 34- के आधार पर अग्रिम धन गिरवी - उप-न्यायाधीश द्वारा पारित साधारण धन डिक्री - अपील जिला न्यायाधीश के न्यायालय में कायम रहती है लेकिन उच्च न्यायालय में दायर की जाती है - ऐसी अपील - क्या इसे अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका के रूप में माना जा सकता है - उच्च न्यायालय अनुच्छेद 227 के तहत कार्य कर सकता है - क्या इसमें सुधार किया जा सकता है - डिक्री में गलती और आदेश 34 के संदर्भ में डिक्री पारित करना - कोर्ट फीस अधिनियम के प्रावधानों के तहत अपील के ज्ञापन पर सही ढंग से भुगतान की गई कोर्ट फीस - क्या न्यायालय द्वारा अपनी अंतर्निहित शक्तियों के तहत वापस करने का आदेश दिया जा सकता है।

अभिनिर्धारित कि भारत के संविधान, 1950 का अनुच्छेद 227, सभी न्यायालयों पर उच्च न्यायालय को अधीक्षण की शक्ति प्रदान करता है जो इसके अधिकार क्षेत्र में स्थित हैं। उच्च न्यायालय को इस अनुच्छेद के तहत कार्रवाई करने के लिए तब कहा जा सकता है जब न्याय के प्राथमिक सिद्धांतों का घोर दुरुपयोग हुआ हो या रिकॉर्ड के सामने कानून की स्पष्ट त्रुटि हो या न्याय का अपमानजनक गर्भपात हुआ हो । लेकिन उच्च न्यायालय को स्वयं को अपील की अदालत में परिवर्तित करना और न्यायालय की विवेकाधीन शक्तियों में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा। यदि पार्टी के पास कोई अन्य उपाय खुला है तो शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। यदि, अपील का अधिकार ¬पार्टी के पास उपलब्ध है, तो अदालत के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपील को याचिका के रूप में मानना और डिक्री में गलती को सुधारना संभव नहीं होगा।

(पैरा 2 और 3)

अभिनिर्धारित कि न्यायालय शुल्क वापस करने का आदेश दिया जा सकता है; जहां कोर्ट-फीस अधिनियम के किसी भी प्रावधान द्वारा रिफंड की अनुमति है, जहां गलती से अतिरिक्त कोर्ट-फीस का भुगतान किया गया है और जहां उच्च न्यायालय द्वारा शुल्क का भुगतान करने का आदेश दिया गया है। जहां कोर्ट फीस का भुगतान सही ढंग से किया गया है, वहां मामला उपरोक्त किसी भी खंड के अंतर्गत नहीं आता है। वर्तमान मामले में अपील उच्च न्यायालय में वकील की देखरेख में दायर की गई है

जबकि यह जिला न्यायाधीश की अदालत में सुनवाई योग्य थी। इस प्रकार, कोर्ट फीस अधिनियम के प्रावधानों के तहत सही ढंग से भुगतान की गई कोर्ट फीस को न्यायालय द्वारा अपनी अंतर्निहित शक्तियों के तहत वापस करने का आदेश नहीं दिया जा सकता है।

(पैरा 6)

प्रथम श्रेणी, फ़रीदाबाद की अदालत से नियमित प्रथम अपील, दिनांक 15 मार्च, 1985, जिसमें रुपये की वसूली के लिए वादी के मुकदमे का फैसला सुनाया गया। प्रतिवादियों के खिलाफ 30,64,907.50 पैसे की लागत और इस मुकदमे की स्थापना की तारीख से डिक्रीटल राशि की वसूली की तारीख तक वादी को डिक्रीटल राशि पर 18 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज की अनुमति दी गई ।

सिविल विविध. (बिना नंबर के) 1985 का.

धारा 151 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन, प्रार्थना करते हुए कि यदि यह माननीय न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि न तो अपील को भारत के संविधान के अनुच्छेद ¬227 के तहत याचिका के रूप में माना जा सकता है , न ही भुगतान की गई कोर्ट फीस वापस करने का आदेश दिया जा सकता है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 के नियम 10 और 10-ए के संदर्भ में मामले में क्षेत्राधिकार रखने वाले न्यायालय में प्रस्तुति के लिए अपील का ज्ञापन उसे वापस कर दिया जाए।

अपीलकर्ता के लिए:- श्री आर.एस. बिंद्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता और श्री आर.के. शर्मा, अधिवक्ता।

उत्तरदाताओं के लिए:- श्री अशोक भान, श्री एके मित्तल के साथ, यूटी के लिए

श्री पीएस दुहान, एजी हरियाणा के लिए।

निर्णय

आरएन मित्तल, न्यायमूर्ति

1. संक्षेप में, तथ्य यह है कि आवेदक ने रुपये की वसूली के लिए एक मुकदमा दायर किया। अधीनस्थ न्यायाधीश प्रथम श्रेणी, फरीदाबाद की अदालत में उत्तरदाताओं के खिलाफ 30,64,907.50 का जुर्माना लगाया गया था, जिसे 15 मार्च, 1985 को उनके द्वारा डिक्री किया गया था। यह आरोप लगाया गया है कि डिक्री की राशि अचल संपत्ति को गिरवी रखकर सुरक्षित की गई थी, लेकिन डिक्री पारित करते समय कोर्ट ने ऐसा नहीं किया। उस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया और परिणामस्वरूप सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 34 के संदर्भ में कोई डिक्री पारित नहीं की, बल्कि ब्याज सहित डिक्री राशि की वसूली के लिए एक साधारण डिक्री पारित कर दी। आवेदक ने 8 जुलाई, 1985 को इस न्यायालय

में उक्त डिक्री के खिलाफ अपील दायर की। हालांकि, कार्यालय ने आपत्ति जताई कि अपील जिला न्यायाधीश, फरीदाबाद की अदालत में सुनवाई योग्य थी, न कि इस अदालत में। परिणामस्वरूप आवेदक ने एक आवेदन दायर किया कि अपील को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका के रूप में माना जाए, और यदि इसे इस तरह नहीं माना जा सकता है, तो अपील पर आवेदक द्वारा भुगतान की गई अदालती फीस वापस करने का आदेश दिया जाए। आगे प्रार्थना की गई है कि यदि उपरोक्त में से कोई भी राहत नहीं दी जा सकती है, तो अपील का ज्ञापन मामले में क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए वापस कर दिया जाए। चूंकि आवेदन में एक प्रार्थना इस आशय की थी कि याचिकाकर्ता को अदालती शुल्क वापस कर दिया जाए, इसलिए मैंने केंद्र शासित प्रदेश के वकील और हरियाणा के महाधिवक्ता को नोटिस जारी करना उचित समझा।

2. श्री बिंद्रा ने तर्क दिया है कि मुकदमे का फैसला आवेदक के पक्ष में किया गया है, लेकिन आदेश 34 के संदर्भ में गलती से ट्रायल कोर्ट द्वारा डिक्री पारित नहीं की गई है। गलती रिकॉर्ड पर पेटेंट है और यह न्यायालय अनुच्छेद 227 के तहत इसका सुधार कर सकता है । उन्होंने आगे तर्क दिया कि उक्त परिस्थितियों में अपील को उक्त अनुच्छेद के तहत एक याचिका के रूप में माना जाना चाहिए। अपने तर्क के समर्थन में वह जोधे और अन्य बनाम राज्य थ्रू राम सहाय पर भरोसा करते हैं।

3. मैंने तर्क पर विधिवत विचार किया है लेकिन इसे स्वीकार करने में अपनी असमर्थता पर मुझे खेद है। अनुच्छेद 227 उच्च न्यायालय को उसके अधिकार क्षेत्र में स्थित सभी न्यायालयों और न्यायाधिकरणों पर अधीक्षण की शक्तियाँ प्रदान करता है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि किसी वादी को वैकल्पिक उपाय प्रदान किया जाता है तो यह न्यायालय सामान्यतः अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करता है। यह विवादित नहीं है कि अपील का अधिकार आवेदक को उपलब्ध था। परिणामस्वरूप, इस न्यायालय के लिए अपील को अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका के रूप में मानना संभव नहीं होगा। उपरोक्त दृष्टिकोण में, मुझे श्री बिंद्रा द्वारा संदर्भित जोधे के मामले (सुप्रा) से समर्थन मिलता है। इसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह देखा गया है कि उच्च न्यायालय को इस अनुच्छेद के तहत कार्रवाई करने के लिए स्थानांतरित किया जा सकता है जब न्याय के प्राथमिक सिद्धांत का घोर दुरुपयोग या रिकॉर्ड के चेहरे पर कानून की स्पष्ट त्रुटि या न्याय का अपमानजनक गर्भपात हो। लेकिन उच्च न्यायालय को खुद को अपील की अदालत में परिवर्तित करना और सबूतों की एक गंभीर जांच करके तथ्यों के निष्कर्षों को नष्ट करना या अदालत के विवेकाधीन आदेशों में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा। आगे यह माना जाता है कि यदि पार्टी के पास कोई अन्य उपाय खुला है तो इस शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। परिणामस्वरूप, विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता।

4. श्री बिंद्रा का दूसरा तर्क यह है कि उन्होंने गलती से इस न्यायालय में अपील दायर की, जबकि यह जिला न्यायाधीश, फरीदाबाद के समक्ष विचारणीय थी। वकील की गलती के कारण किसी वादकारी

को परेशान नहीं होने दिया जाना चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि इस स्थिति में कोर्ट की अंतर्निहित शक्तियों के तहत कोर्ट फीस वापस करने का आदेश दिया जाए। अपने तर्क के समर्थन में वह **जान मोहम्मद बनाम अमोलक राम, एआईआर 1936 लाहौर 301, अवा सिंह तिरलोक सिंह बनाम मुंशी राम आत्मा राम, AIR 1968 दिल्ली 249**, **कृतिबासा नायक बनाम जगन्नाथ महाप्रवु, एआईआर 1975 उड़ीसा 211** और **हरियाणा राज्य बनाम माधो पार्षद, 1981 पीएलजे 147** पर भरोसा करते हैं।

5. दूसरी ओर, श्री अशोक भान ने प्रस्तुत किया है कि अपील पर कोर्ट-फी का भुगतान कोर्ट फीस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार किया गया है और परिणामस्वरूप इसे न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के तहत वापस करने का आदेश नहीं दिया जा सकता है। वह **जवाहर सिंह सोभा सिंह बनाम भारत संघ और अन्य, एआईआर 1958 पंजाब 38 (एफबी)** का हवाला देते हैं।

6. मैंने इस मामले पर गहन विचार किया है। हालाँकि, मैं श्रीमान की बात से सहमत हूँ।

अशोक भान जवाहर सिंह के मामले (सुप्रा) में पूर्ण पीठ ने कहा कि अदालत की फीस माफ करने या वापस करने की न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति केवल उस फीस तक ही सीमित है जिसका अवैध रूप से या गलत तरीके से मूल्यांकन या संग्रह किया गया है, और इसका विस्तार उन फीस तक नहीं है जिनका भुगतान किया गया है या न्यायालय-फीस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार एकत्र किया गया। बेंच के लिए बोलते हुए भंडारी, मुख्य न्यायमूर्ति की निम्नलिखित टिप्पणियों को लाभ के साथ पढ़ा जा सकता है: -

> "6-ए.....कानूनी सिद्धांतों के आधार पर किसी न्यायालय को न्यायालय-शुल्क की वापसी का आदेश देने की शक्ति है
>
> -
>
> (1) जहां न्यायालय शुल्क अधिनियम लागू होता है,
>
> (2) जहां गलती से अधिक भुगतान हो गया हो, और
>
> (3) जहां न्यायालय की गलती के कारण किसी पक्ष को पूर्णतः या आंशिक रूप से न्यायालय शुल्क का भुगतान करने के लिए बाध्य किया गया हो। यह प्रस्ताव इतनी अच्छी तरह से स्थापित है कि मैं कोर्ट-फीस का भुगतान करने के लिए इस न्यायालय की शक्ति को बनाए रखने के लिए दायर की गई दलीलों और प्राधिकार पर फिर से विचार करना पूरी तरह से अनावश्यक मानता हूं, जहां ओवरसाइट, गलती या अनजाने के माध्यम से अतिरिक्त शुल्क का भुगतान किया गया है।

उपरोक्त टिप्पणियों को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि कोर्ट-फी को खंड (1) के तहत वापस करने का आदेश दिया जा सकता है, जहां कोर्ट-फीस अधिनियम के किसी भी प्रावधान द्वारा रिफंड की अनुमति है; खंड (2) के तहत गलती से अतिरिक्त न्यायालय शुल्क का भुगतान किया गया है और खंड (3) के तहत जहां न्यायालय द्वारा उच्च न्यायालय शुल्क का भुगतान करने का आदेश दिया गया है। श्री बिंद्रा ने

स्वीकार किया है कि खंड (1) लागू नहीं है क्योंकि कोर्ट-फीस अधिनियम में केवल चार धाराएं हैं, अर्थात् धारा 13 , 14 , 15 और 19ए जो कोर्ट-फीस की वापसी से संबंधित हैं और वर्तमान मामला लागू नहीं है। इनमें से किसी भी अनुभाग द्वारा कवर किया गया। यह शेष धाराओं के अंतर्गत भी नहीं आता है क्योंकि यह आरोप नहीं लगाया गया है कि अपील के ज्ञापन पर अतिरिक्त न्यायालय शुल्क का भुगतान किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपील वकील द्वारा निरीक्षण के माध्यम से इस न्यायालय में दायर की गई है जबकि यह जिला न्यायाधीश के न्यायालय में विचारणीय थी। अब अपीलकर्ता उस न्यायालय में अपील दायर नहीं करना चाहता है। इसलिए, कोर्ट-फी की वापसी का आदेश देने के लिए पर्याप्त आधार नहीं हैं।

7. अब मैं श्री बिंद्रा द्वारा संदर्भित मामलों से निपटूंगा। जान मोहम्मद के मामले (सुप्रा) में याचिकाकर्ता ने एक आदेश के खिलाफ अपील दायर की, जहां से कोई अपील सुनवाई योग्य नहीं है। परिणामस्वरूप अपील को पुनरीक्षण में परिवर्तित कर दिया गया। विद्वान न्यायाधीश ने इस आधार पर याचिकाकर्ता को कोर्ट-फी वापस करने की अनुमति दी कि उस आदेश के खिलाफ कोई अपील नहीं की जा सकती। इस मामले से निपटते समय, जवाहर सिंह के मामले (सुप्रा) में पूर्ण पीठ ने निर्णय की शुद्धता पर संदेह किया। अवा सिंह का मामला (सुप्रा), तथ्यों पर अलग है। इसके अलावा, दिल्ली उच्च न्यायालय की विद्वान पीठ ने जवाहर सिंह के मामले (सुप्रा) में पूर्ण पीठ की टिप्पणियों के विपरीत कुछ टिप्पणियाँ कीं। ऐसी स्थिति में मेरे लिए उसमें व्यक्त विचार से सहमत होना संभव नहीं है। माधो प्रसाद का मामला (सुप्रा) भी अलग है। मामले में, एक मृत व्यक्ति के खिलाफ इस कोर्ट में अपील दायर की गई थी, जिसे अक्षम मानकर खारिज कर दिया गया था। अपील खारिज होने से पहले दूसरे पक्ष ने प्रति-आपत्ति दाखिल की। अपील खारिज होने के बाद प्रति-आपत्तिकर्ता ने इस आधार पर कोर्ट-फी की वापसी के लिए आवेदन किया कि अपील खारिज कर दी गई है और इसलिए प्रति-आपत्ति सुनवाई योग्य नहीं है। विद्वान न्यायाधीश ने, उस मामले की परिस्थितियों में, अदालत-शुल्क वापस करने का आदेश दिया। कृतिबासा नायक के मामले (सुप्रा) में विद्वान पीठ ने पाया कि न्यायालय के पास संहिता की धारा 151 के तहत कोर्टफी वापस करने की अंतर्निहित शक्तियाँ थीं। निर्णय सुनाते समय इसने इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले पर ध्यान नहीं दिया। यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि इसके द्वारा की गई टिप्पणियाँ पूर्ण पीठ की टिप्पणियों के विपरीत हैं। इन परिस्थितियों में, श्री बिंद्रा उनके द्वारा संदर्भित मामलों से लाभ नहीं ले सकते।

8. उपरोक्त कारणों से मैं याचिकाकर्ता की इस प्रार्थना को अस्वीकार करता हूं कि अपील को संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका के रूप में माना जाए , या अदालत शुल्क वापस करने का आदेश दिया जाए। हालाँकि, मैं अंतिम प्रार्थना स्वीकार करता हूँ और आदेश देता हूँ कि अपील

का ज्ञापन उचित न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए उसे वापस कर दिया जाए। मूल्य के लिए कोई आदेश नहीं।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

उदित अग्रवाल

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

करनाल, हरियाणा